पथिक - जागृति - सन्देश

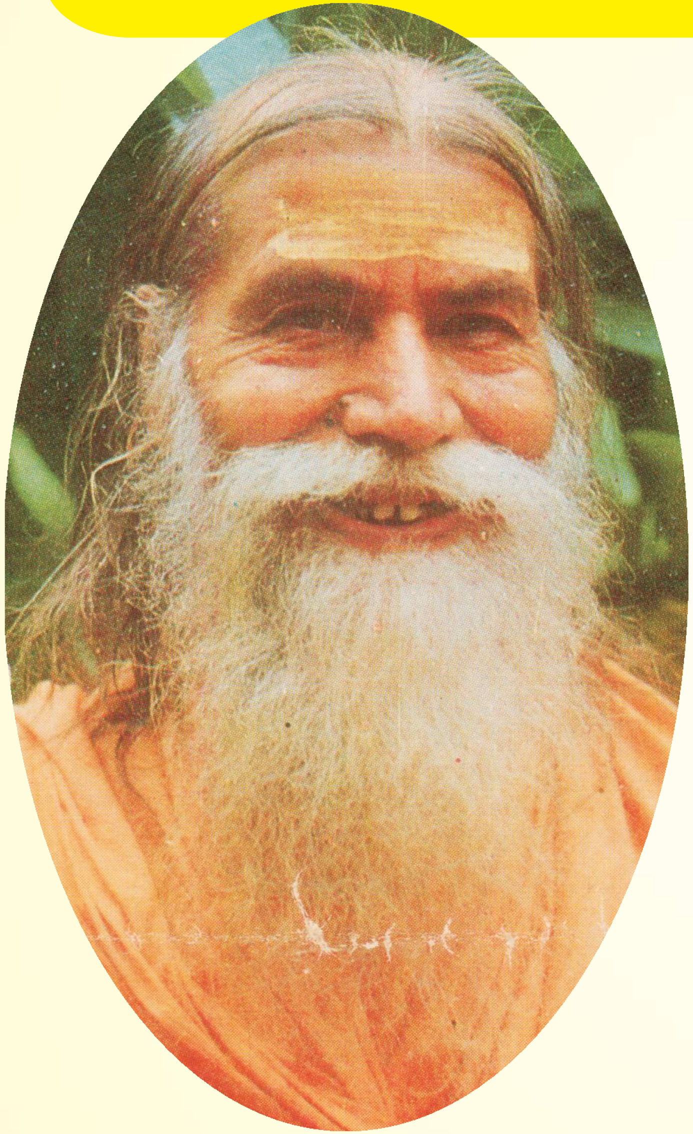

परमपज्य सद्गुरुदेव
'पथिक जी' महाराज

वह नर बड़भागी हैं जिनको निज जीवन लक्ष्य का, ज्ञान मिला।
अभिमान मिटा नश्वर तन का, परमात्म तत्व का ध्यान मिला।।
जन, जन्म-मरण से मुक्त हुआ जब सत बोधामृत पान मिला।
वह पथिक ब्रह्म में लीन हुआ निर्भय पद दिव्य स्थान मिला।।

सन्त के वाक्यों द्वारा हम साधकों को यह समझ लेना चाहिए कि हम कष्टों दुःखों को कैसे पार कर सकते है।

हम सभी साधक किस प्रकार भले होकर भलाई कर सकते हैं।

हम सभी को सद्बुद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है।

सभी प्राणियों को हम कैसे प्रसन्न रख सकते हैं।

दुर्जन भी कैसे सज्जन बन सकते हैं।

सज्जन कितनी सरलता से शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

शान्त लोग किस प्रकार बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं।

मुक्त पुरुष किस प्रकार औरों को करुणित होकर मुक्ति की युक्ति समझा सकते हैं।

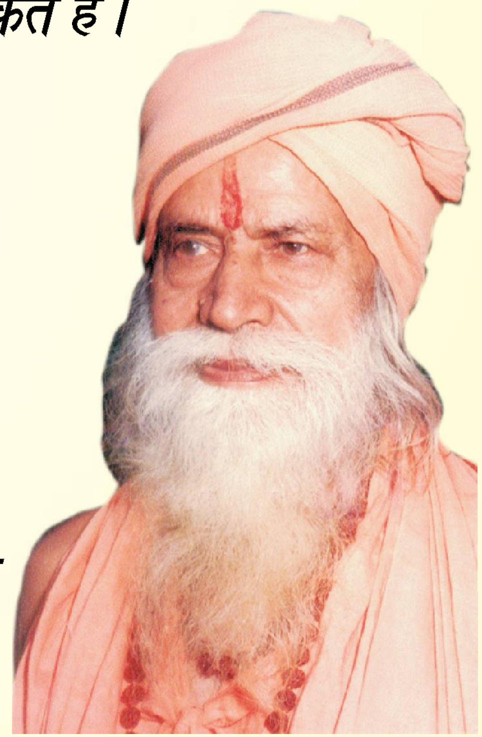

कुछ पाने की, देखने की इच्छा न करो तुम स्वयं ही सन्त हो। तुम्हारे अहं के पीछे वह महान आत्मा, महात्मा है जिसे सर्दी, गर्मी नहीं लगती। भूख, प्यास नहीं लगती, दुःख-सुख नहीं होता जो सदा जागता रहता है। उसी के होने से सब कुछ होता रहता है। परन्तु अहंकार नहीं होता ऐसे महात्मा का स्मरण अपने आप के साथ करो। तब बाहर के महात्मा के लिये दौड़ना समाप्त होगा। तुम्हारे मन के बुद्धि के, अहंकार के पीछे ऐसा महात्मा है, सिद्ध महापुरुष नित्य विराजमान है। उसी का पता मैं बता रहा हूँ। अभी तक नहीं बताया था। एक दिन मैंने एक महात्मा को देखने का विचार किया। उसी दिन मुझे सद्गुरु ने सिद्ध महात्मा दिया तब मैंने जाने का विचार छोड़ दिया। और जब चाहता हूँ तभी सिद्ध महात्मा का दर्शन अपने आप में करता हूँ। तुम भी ऐसा ही करो। बहुत दिन बाहर भटक कर देख लिया अभी तक विश्राम नहीं मिला। अब अपने ज्ञान स्वरूप चेतन आत्मा को महात्मा जान कर उसी में बुद्धि स्थिर करो। आत्मा में ही प्रीति हो आत्मा में ही तुष्टि सन्तुष्टि हो तभी विश्राम मिलेगा गीता में यही कहा गया है।

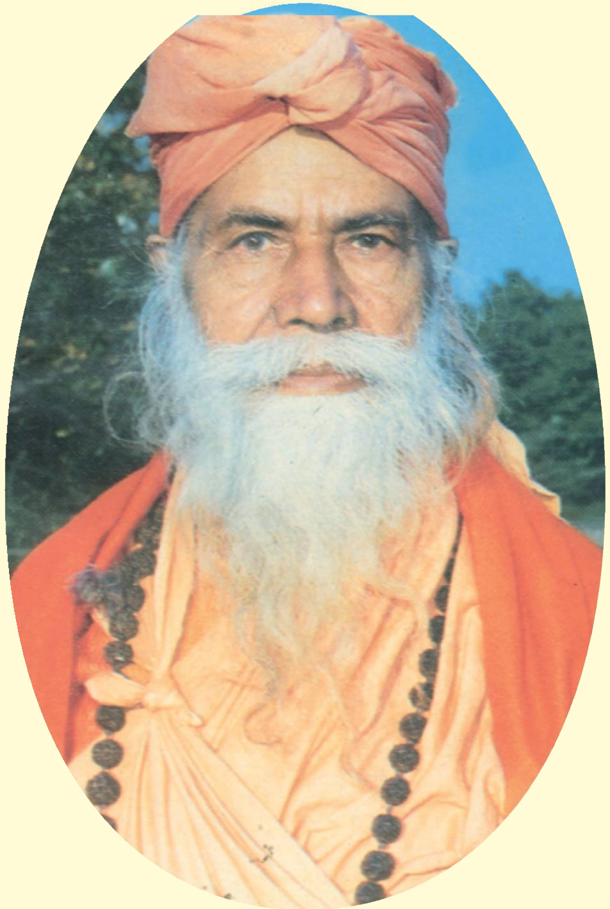

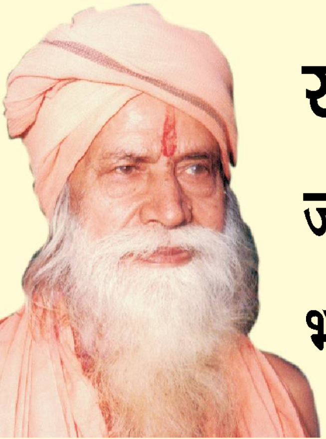

सन्त-वचन- यदि तुम प्रभु के समर्पित हो तो सब कुछ स्वीकार करते रहना है। जो जाये उसे ही चाहो, अपनी ओर से कुछ न चाहो। नित्य उस परमात्मा के भक्त, भगवान की कृपा का अनुभव करते हुए महिमा गाते हुए जीवन को जीते हैं।

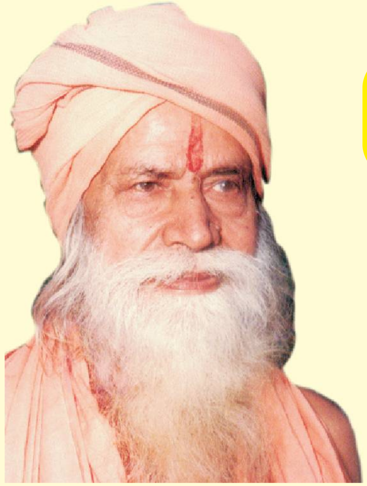

सद्गुरु अवतरण

ज्ञान अद्वय जब प्रकाशित वही सद्गुरु अवतरण है।।
तभी दर्शन सुलभ होता शुद्ध जब अन्तः करण है।
आत्मा आनन्दमय है सर्वमय है नित्य चेतन।

अहंकार विमूढ़ दुख सुख भोक्ता है संग तन मन।
प्रेम में गलता पिघलता जब कि श्रद्धायुक्त शरण है।।
मैं खुद ही खोया हुआ था खोज में ही जब तुला था।
अनदिखा आनन्द का यह द्वार तो सब दिन खुला था।
यहाँ मिटता ज्ञान में अज्ञान का जो आवरण है।।
कौन हमको जानता था शरण में आने के पहले।
अब ज़माना जानता है शक्ल दिखलाने के पहले।।
बिना अपने कुछ किये ही हो रहा पोषण भरण है।।
जो कहीं भी पा न सकते वह यहाँ पर पा रहे हैं।
जो कहीं भी गा न सकते वह यहाँ हम गा रहे हैं।
जो कहीं भी बन न सकता बन रहा वह आचरण है।।
जब कभी ममता मिटे तब अहं के आकार टूटें।
इसी को तो मुक्ति कहते मान्यता के बन्ध छूटें।
यहीं परम स्वतंत्रता है यहीं ज्ञानामृत झरण है।।
यहाँ आने पर ही जाना कहीं कुछ पाना नहीं है।
स्वयं में ही प्राप्त प्रभु हैं अब कहीं जाना नहीं है।
पथिक का विश्राम धाम स्वज्ञान ही सब दुःख हरण है।।

परमात्मा वहीं है जहाँ तुम स्वयं हो, ठहरो और देखो। राग विराग, आसक्ति, विरक्ति, मोह-घृणा, ईर्ष्या-द्वेष क्रोध सभी अहंकार की सन्ताने है।

शान्ति न खोजो, अशान्ति को जानो।

सुख का अन्त तभी होता है जब इच्छा उत्पन्न होती है। अज्ञान में इच्छा की उत्पत्ति होती है, इच्छा की पूर्ति का संकल्प न करो प्रभु के निधान पर छोड़ दो।

ज्ञान से इच्छाओं की निवृत्ति होती है, जो है सब परमात्मा का ही है ऐसा ज्ञान में देखो। सत परमात्मा निरन्तर उपस्थित है तुम प्रयास में व्यस्त अनुपस्थित हो।

जब मन है तब संसार है, जब मन नहीं तभी उस रिक्त स्थान में सत्य ही पूर्ण है, ध्यान से इस पूर्ण का अनुभव शून्य शान्त होकर करो।

जो निरन्तर है इस "है" का स्मरण ही तो सत्संग है, विनाशी के प्रकाशक अविनाशी का अनुभव होना सत्संग है।

तुम ध्यान से देखते हुए अपने ज्ञान स्वरूप में परम प्रेमास्पद को कभी न भूलो।

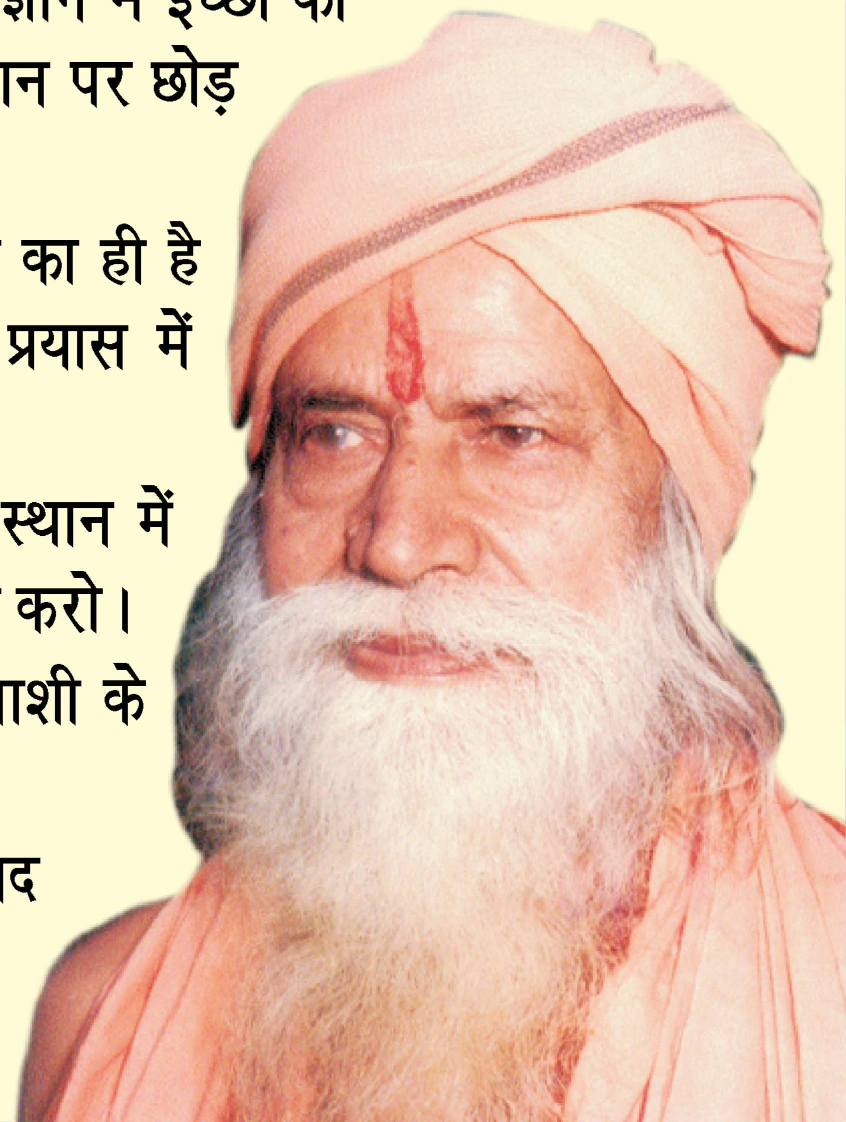

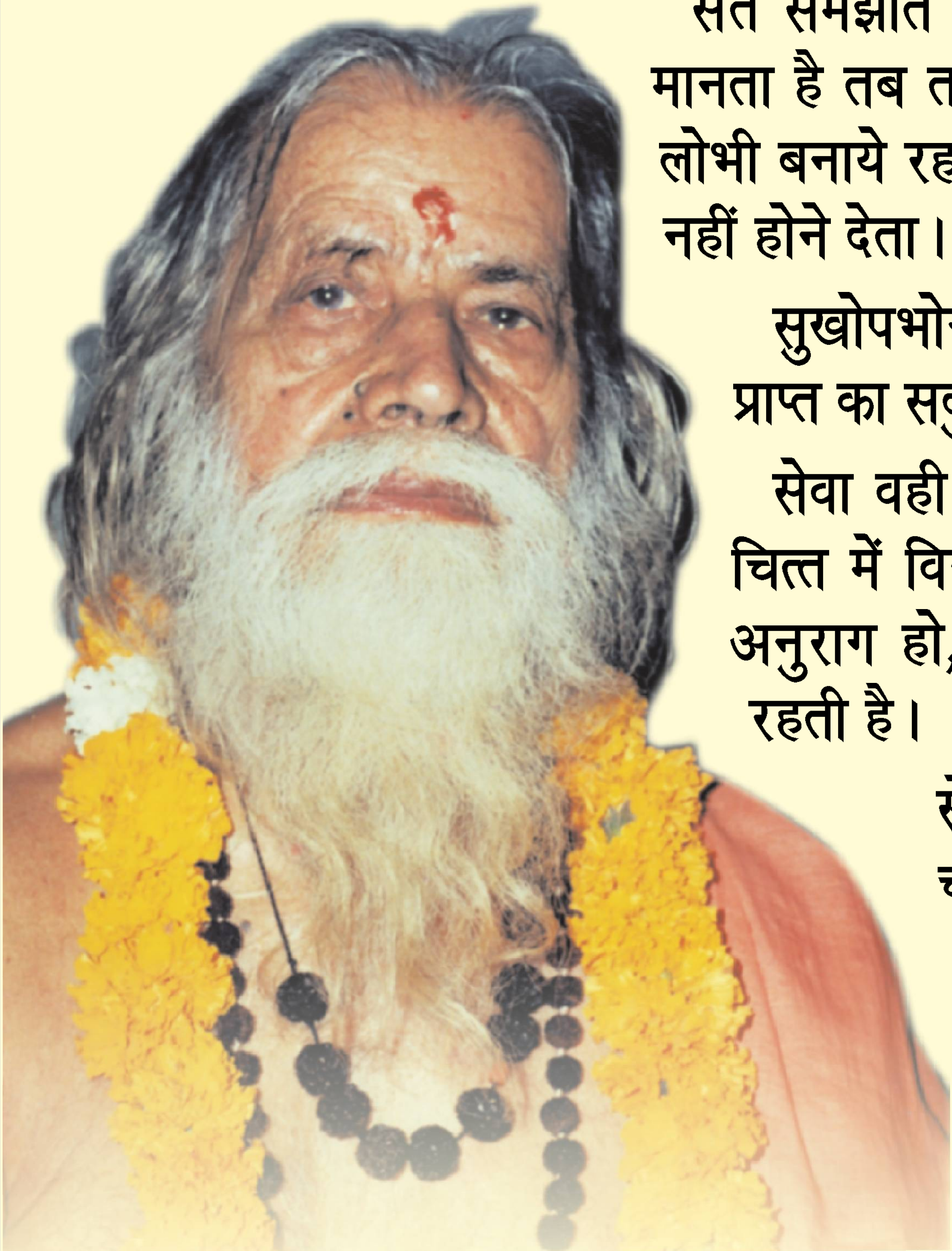

संत समझाते हैं कि मन जब तक प्रीतिपूर्वक तन को सुन्दर मानता है तब तक मोही बना रहता है। धन का प्रभाव मन को लोभी बनाये रहता है। अनुकूल सुख का प्रभाव कामना से मुक्त नहीं होने देता।

सुखोपभोग से प्राप्त का दुरुपयोग होता है। सेवा द्वारा ही प्राप्त का सदुपयोग होता है।

सेवा वही सुन्दर हितकारी है जिससे दोषों का त्याग हो, चित्त में विनाशी से विराग हो, अविनाशी चेतन स्वरूप में अनुराग हो, ऐसी सेवा के लिये गुरुविवेक की आवयकता रहती है।

सेवा करते हुए अपने मन का संकल्प नहीं करना चाहिए। संकल्प पूर्ति का सुख पराधीन बनाता है, इसीलिये संत सम्मति है कि जो कुछ करो उससे दूसरों के शुभ संकल्प की पूर्ति होनी चाहिए, जिसके संग से कुछ बने हो उसी की पूर्ति में तत्पर रहना सेवा होगी।

जो भोक्ता बनता है वही अभोक्ता हो सकता है, जो कर्ता बनता है वही अकर्ता हो सकता है, जो असत् बनता है वही सत् हो सकता है, जो जड़ बनता है वही नित्य चेतन हो सकता है जो विकारी बनता है वही निर्विकारी हो सकता है, जो देह बन सकता है वही ब्रह्ममय हो सकता है।

अब बार-बार उल्टे लौट कर निश्चय करना है कि मैं नित्य मुक्त हूँ, निरपेक्ष साक्षी हूँ, एक रस चैतन्य स्वरूप हूँ, अक्षर हूँ, केवल आत्मा हूँ, एक हूँ, कला रहित हूँ, निर्मल हूँ, निर्गुण हूँ, निरवयव हूँ, अज अविनाशी हूँ, व्यापक विज्ञान स्वरूप हूँ। शक्कर में मिठास की भाँति सर्व में व्यापक हूँ, जो अनित्य एवं असत् के चिन्तन से असत् अनित्य बन गया है वही सत् नित्य के चिंतन से सत् एवं नित्य हो सकता है।

उपनिषद् में कई प्रकार के आनन्दों का वर्णन है सर्वोपरि ब्रह्मानन्द को जो प्राप्त है ऐसे सद्गुरु, दर्शकों के लिये जो परम सुखद हैं।

जो केवल मूर्तिमान ज्ञानस्वरूप है। द्वन्दों के प्रभाव से जो मुक्त है। आकाश के समान जो नित्य निर्लिप्त है। तत् त्वं असि जिनका नित्य लक्ष्य है। जो एक अद्वितीय नित्य सत्य में स्थित है। जो मल से रहित है अचल है। सब बुद्धियों का जो साक्षी है। भावों से अतीत है त्रिगुणातीत है। ऐसे ज्ञानस्वरूप गुरु को नमस्कार है।

जब तक सत् तत्व का विवेक नहीं होता तब तक अविवेकी, श्रद्धालु देह को गुरु और गुरुमय मानता है। बुद्धि शुद्ध होने पर ही ज्ञानस्वरूप गुरुतत्व का बोध होता है। परमात्मा ही गुरुतत्व है।

जिस प्रकार काँच का बल्ब विद्युत प्रकाश का माध्यम है विद्युत शक्ति काँच के बल्ब से सदा भिन्न है, काँच का पात्र (फ़्यूज) टूट जाता है लेकिन विद्युत अपने स्वरूप में नित्य रहती है इसी प्रकार गुरुतत्व प्रज्ञा के माध्यम से प्रकाशित होते हुए भी परिवर्तन से नित्य मुक्त रहता है।

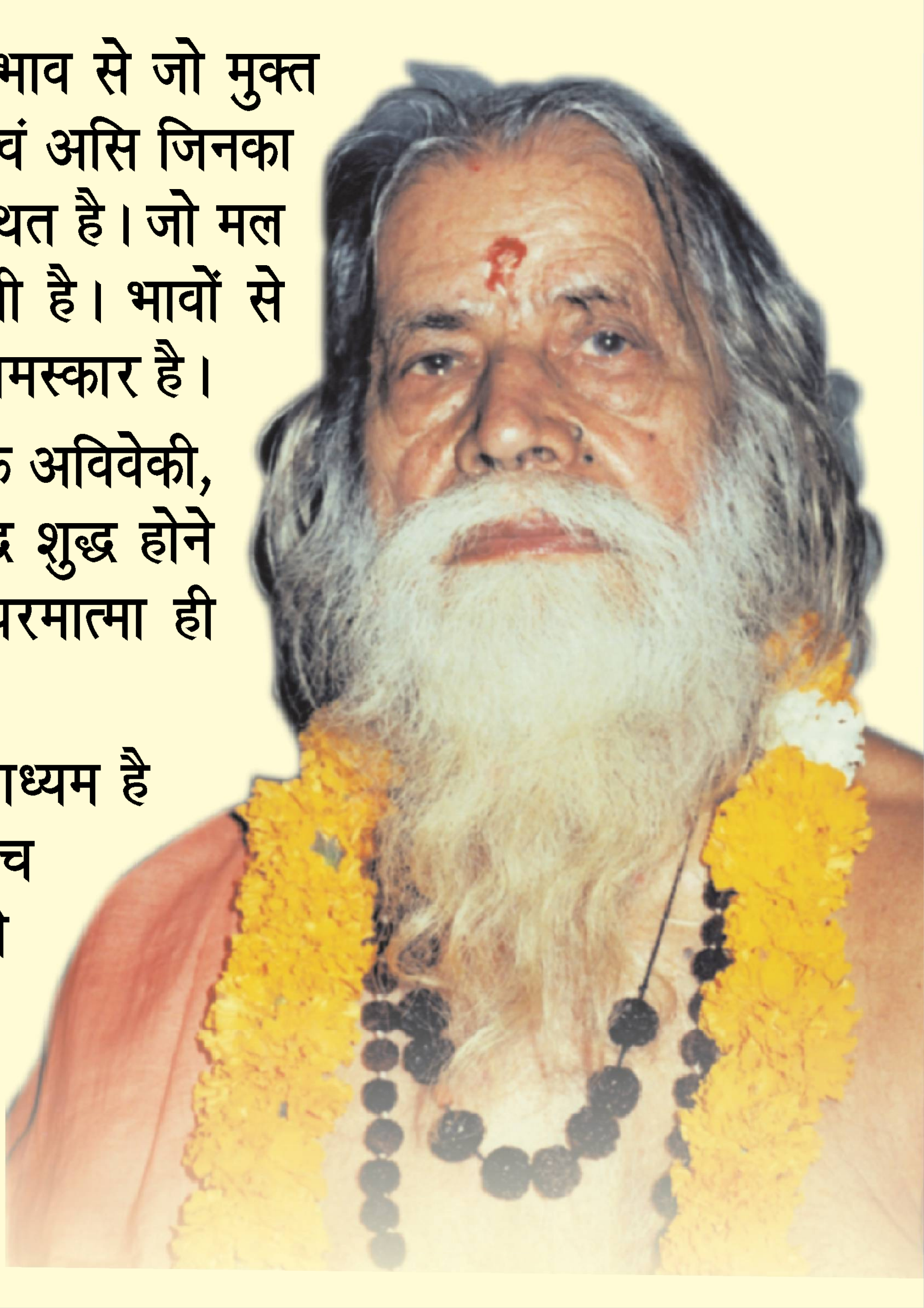

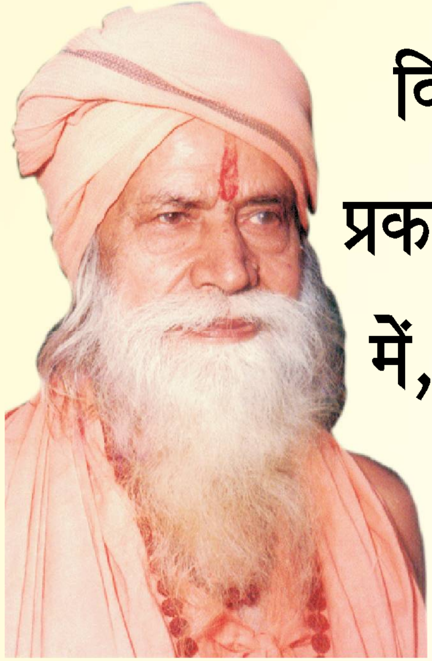

विशुद्ध प्रज्ञा बुद्धि में ही गुरुतत्व प्रकाशित होता है। किसी देह में प्राणों में, इन्द्रियों में, अमन में, त्रिगुणात्मक बुद्धि में, विकार प्रभाव तथा परिवर्तन होता है परन्तु अखण्ड ज्ञान स्वरूप गुरुतत्व सदा प्रकृति के प्रभाव से मुक्त रहता है इस निर्विकार ज्ञानस्वरूप गुरु की स्तुति श्रद्धालु भक्त को प्राप्त करना सर्वप्रथम आवश्यक है।

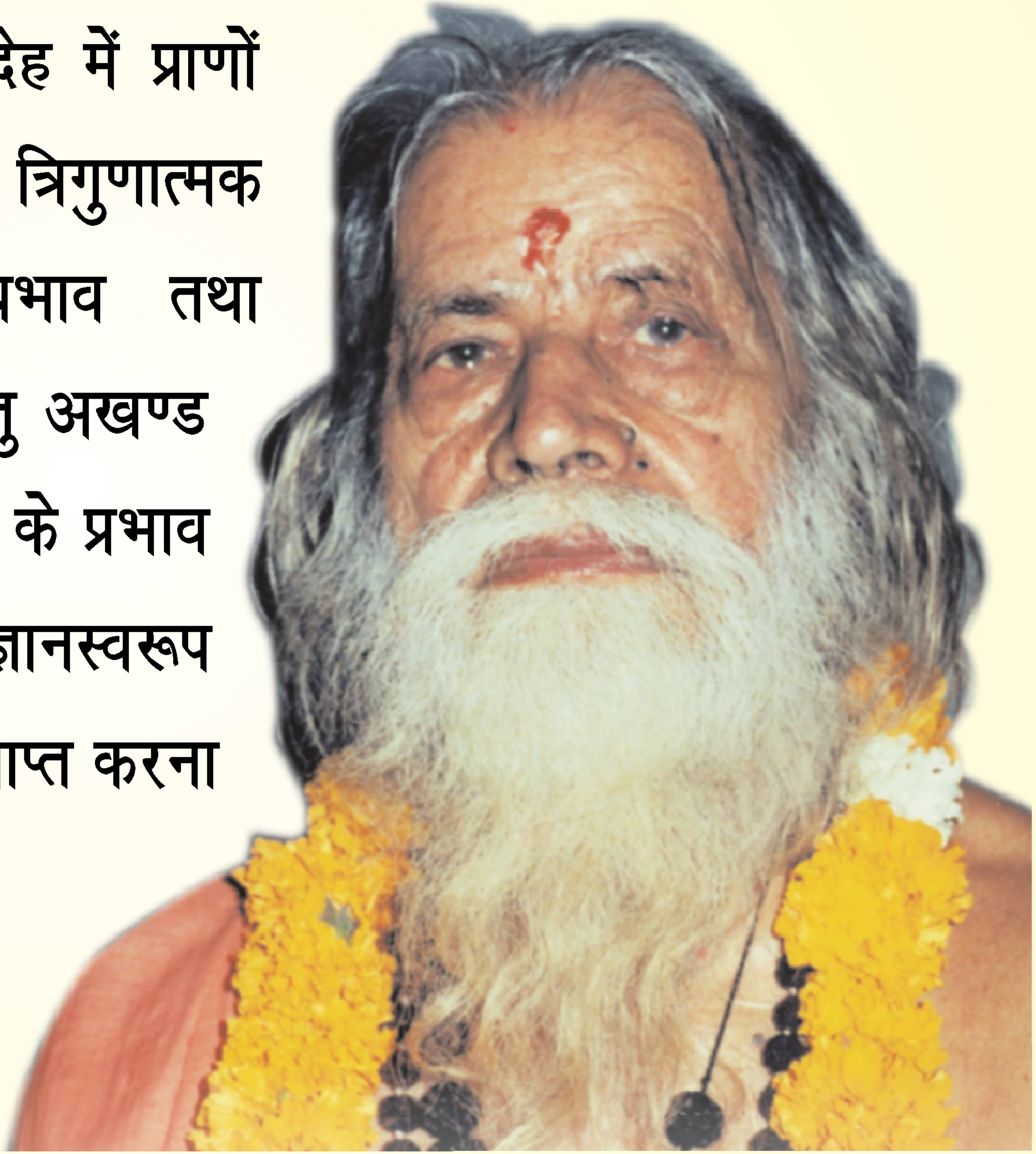

" पथिक प्रभु को ही आर-पार देखता हूँ "

कभी सन्तों के सद्विचार देखता हूँ मैं।
कभी प्रपंच का विस्तार देखता हूँ मैं।।
सुना है सब विभूतियाँ उन्हीं अनन्त की हैं।
उन्हीं को सर्वमय साकार देखता हूँ मैं।।
सिन्धु में बिन्दु की तरह मैं हूँ उनका उनमें।
विमुख होकर ही अहंकार देखता हूँ मैं।।
मेरा कुछ भी नहीं अपना उन्हीं का सब कुछ है।
अपने प्रियतम का ही संसार देखता हूँ मैं।।
मेरे सर्वस्व यही हैं अब और क्या चाहें।
अपना तो उन पर ही अधिकार देखता हूँ मैं।।
चाहे जब चाहे जहाँ उनको जो कुछ भी माने।
सदा निज भावनानुसार देखता हूँ मैं।।
दया है उनकी जब मन चाही पूरी होती है।
कृपा है जब कि तिरस्कार देखता हूँ मैं।।

उन्हीं की दी हुई नज़र से अपने जीवन में।
दया कृपा को बार-बार देखता हूँ मैं।।
क्या कहूँ क्या दिखा के क्या सिखा रहे हैं अब।
पथिक प्रभु को ही आर-पार देखता हूँ मैं।।

दैवी और आसुरी वृत्तियाँ

हमें यह भी समझाया गया है कि देहाभिमानी असत् संगी मोहासक्तभोगी रहने तक देह को बहुत ध्यान से देखा जाता है, देह को स्वच्छ रखने की बहुत सावधानी रहती है, देह की कुरूपता बहुत खराब लगती है लेकिन भीतर अन्तः करण की अशुद्धि पर ध्यान नहीं जाता। तुम्हें असत् संग से मुक्त होना है इसलिए भीतर आसुरी शक्तियों से सावधान रहो।

अन्तःकरण में दम्भ (दिखावापन) पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, लोभ, क्रोध, कटुता, कठोरता, निर्दयता, कृपणता, निर्लज्जता, चंचलता, विषय लोलुपता, व्यर्थ चेष्टा, द्रोह, राग, द्वेष हिंसा आदि दोष, दुर्विकार, दुर्विचार आने ही न दो, यदि भीतर से उमड़ते हुए दिखें तो उन्हें कर्म के क्षेत्र में, व्यवहार में प्रकट न होने दो, उनको सहयोग ही न दो और उनके आक्रमण को दूर से देखो और आत्मस्थ स्वस्थ रहो। भगवान ने दो प्रकार के स्वभाव वाले देहधारी प्राणियों का वर्णन किया है। दैवी स्वभाव वाले तो महात्मा कहे जाते हैं आसुरी स्वभाव वालों को दुरात्मा, पापात्मा, अबुद्धात्मा, अन्धात्मा, नार की आत्मा, लोभात्मा, क्रोधात्मा, क्रूरात्मा, जड़ात्मा, अहंकार विमूढ़ात्मा आदि कर्मानुसार अनेक उपाधियों से सम्बोधित किया जाता है।

हम लोग जो कि भगवान को मानते हैं, धर्म को मानते हैं, पाप पुण्य को मानते हैं, जो गीता, रामायण, पुराण आदि धर्मग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, विचार करने पर ज्ञात होता है कि दैवी स्वभाव तथा सद्‌गुण सम्पन्न महात्मा के सुलक्षण तो घटित नहीं हैं, परन्तु सौभाग्य है कि महात्माओं के अथवा भगवान के वचन पढ़ते हैं, सुनते हैं और कहते हैं। इसीलिये हम सभी श्रद्धालु जन बन्धनों से, पापों से, अज्ञान से मुक्त होना चाहते हैं, परन्तु मुक्त नहीं हो पाते, क्योंकि अपने अन्तःकरण में छिपी हुई दैवी वृत्तियों के साथ आसुरी वृत्तियों का अध्ययन नहीं करते।

हम लोग सुसंस्कार तथा सुसंग एवं सत्शास्त्र और संत वचनों से प्रेरित होकर जबसे, जितने अंश में शुभ कर्म करने लगे, जप, पाठ, पूजन, देवाराधन करने लगे, उतने से ही हमें अपने से अधिक अज्ञानी, नासमझ, अशिक्षित, अन्ध श्रद्धालु जनों से जो आदर सम्मान मिलने लगा, किसी ने हमें भक्त बना दिया, किसी ने हमें पण्डित बना दिया, किसी ने ज्ञानी उपदेशक साधु-महात्मा बना दिया, इसी से हमारा अहंकार अपने को वैसा ही मानकर संतुष्ट हो गया और लोगों की मान्यता का भोगी बन गया। इस प्रकार दूसरों के द्वारा अहंकार कुछ पाकर सुखी तो हो सकता है लेकिन शान्ति मुक्ति तो मिलती नहीं, इसीलिए हम कल्याणार्थी जनों को भगवान के वचनों के अनुसार अपने भीतर दैवी स्वभाव और आसुरी भाव का निरीक्षण करना चाहिए और आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग करना चाहिए।

इस धरती में करोड़ों मनुष्य बहुत सुखी हैं और बहुत दुखी भी होते हैं। प्रयत्न करने पर भी सुख के बीच में दुख आ ही जाता है, सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार के करोड़ों नर-नारियों को अपने वेद शास्त्र गीता आदि धर्मग्रन्थों के अध्ययन का तथा श्रवण का सौभाग्य नहीं मिलता।

आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि हम अनेक विद्वान गीता का अध्ययन, श्रवण तद्नुसार कथनोपकथन प्रवचन करते हुए गीता में सोलहवें अध्याय में वर्णित दैवी और आसुरी सम्पदा के अनुसार अपना निरीक्षण नहीं करते।

हमें गुरुदेव ने सावधान किया कि जब कभी तुम अपने में भय का अभाव देखो अन्तःकरण में निर्मलता को देखो, जब कभी तत्व ज्ञान के लिए ध्यान में दृढ़ता देखो, साथ ही जब कभी सात्विक भाव से दान के लिए उदारता तथा इन्द्रियों को वश में कर सको अथवा जब कभी प्रतिकूलताओं को सहन कर सको अथवा क्रोध के वश में न होकर दया, क्षमा करुणायुक्त बर्ताव कर सको, जितने अंशों में वैराग्य, सत्यानुराग, नम्रता, सरलता आदि दैवी गुणों का अवतरण देखो।

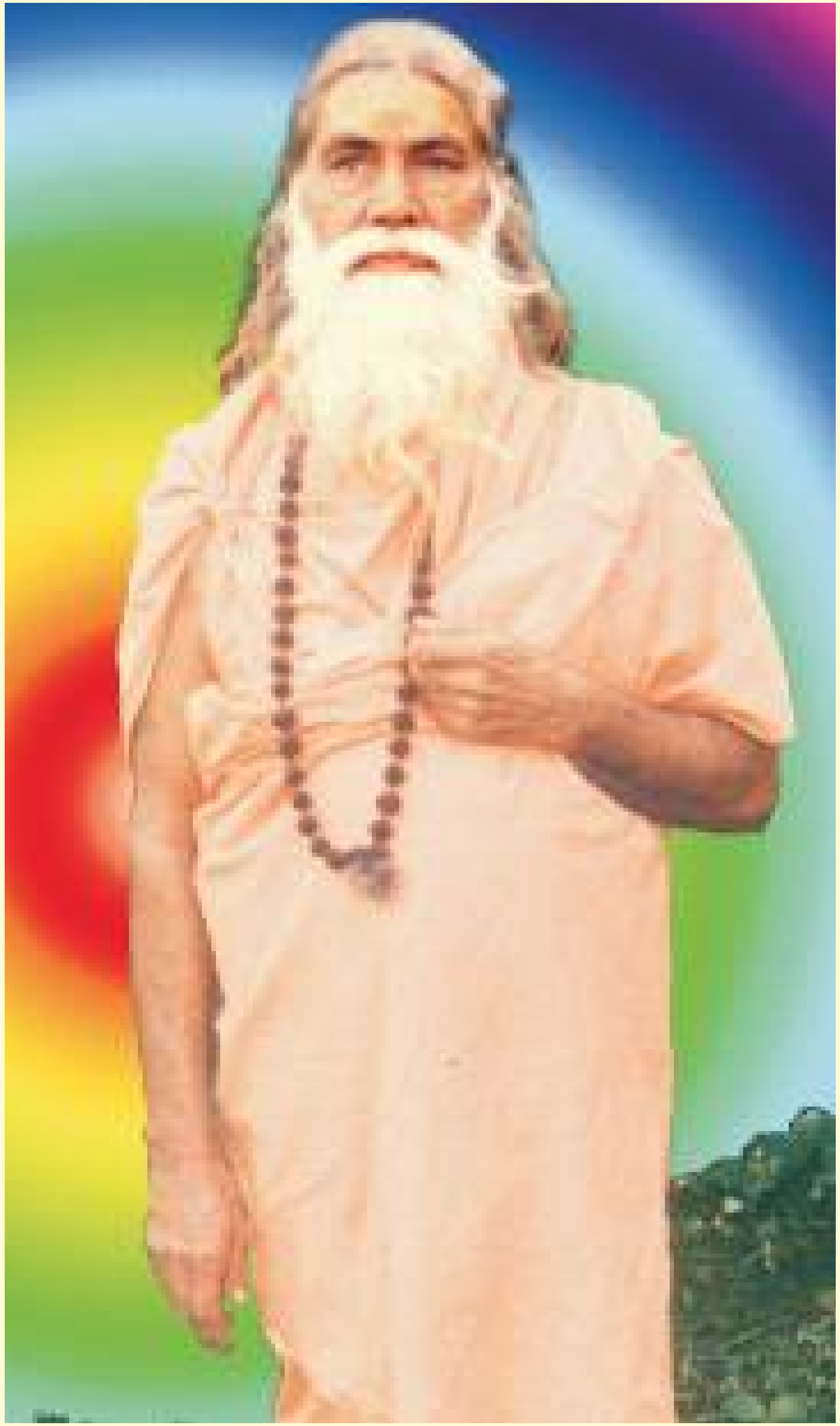

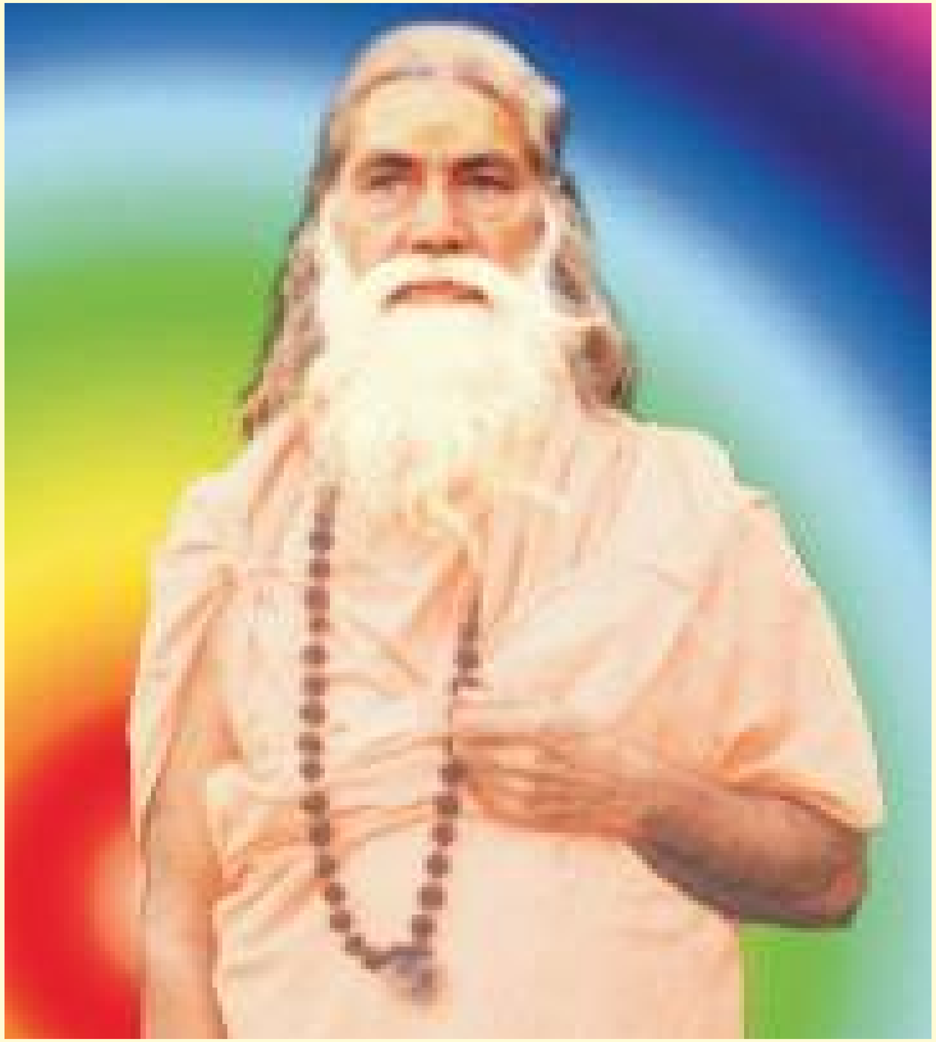

सन्त-वचन-

भगवद्-चिन्तन से विषय चिन्तन को, त्याग से ही राग

आश्चर्य है कि सुखोपभोग के दुखद परिणाम को जानते हुए भी अहंकार भोगासक्त ही रहता है। ऐसा क्यों है? इसलिए है कि केवल सुखभोग के अन्त में दुख भोगना होगा यह पढ़कर या सुनकर सुख की आसक्ति नहीं छूटती और विरक्ति नहीं होती। विरक्ति आती है और धर्माचरण की पूर्णता केवल बाहरी क्रियाओं को दोहराते रहने से नहीं होती, वह मन्दिरों में दर्शन से अथवा पूजा पाठ करने से भी नहीं होती। लाखों लोग यह सब करते रहते हैं, यह सब कुछ करने से अहंकार को करने का अभिमान पुष्ट होता है परन्तु विषयासक्ति सुखासक्ति नहीं मिटती।

वास्तव में धर्माचरण की पूर्णता आती है निष्काम सेवा से, निष्काम रह कर दान करते रहने से और सेव करते हुए जो प्रतिकूलताएं आएं उन्हें धैर्य के साथ, शान्ति के साथ सहते रहने से धर्म में पूर्णता आती है। जो कुछ प्रारब्ध में शक्ति, सम्पत्ति योग्यता, अधिकार तथा भोग सामग्री सुलभ है उससे शरीर निर्वाह करते हुए अभावग्रस्त दुखीजनों की सहायता में सब कुछ लगा देनें से ही आसक्ति के स्थान में विरक्ति आ जाती है।

जिससे कोई भूल न हो, भगवान वही है।
भूल हो, भूल का भान न हो, हैवान वही है।।

भूलों के रहते चित में जिसको चैन नहीं आये।
अपना सुधार करता जाये, इंसान वही है।।

आसुरी प्रकृति वह, जहाँ भूल का दुःख नहीं होता।
जो भूल देखने दे न कहीं, अभिमान वही है।।

जो हानि देखनी पड़ती वो सब भेंट भूल की है।
जो भूल करे वह भोगे प्रकृति का विधान वही है।।

ये सारी भूल भोग सुख की तृष्णा वश ही होती है।
बस 'पथिक' जो कि तृष्णा तज दे गतिमान वही है।।

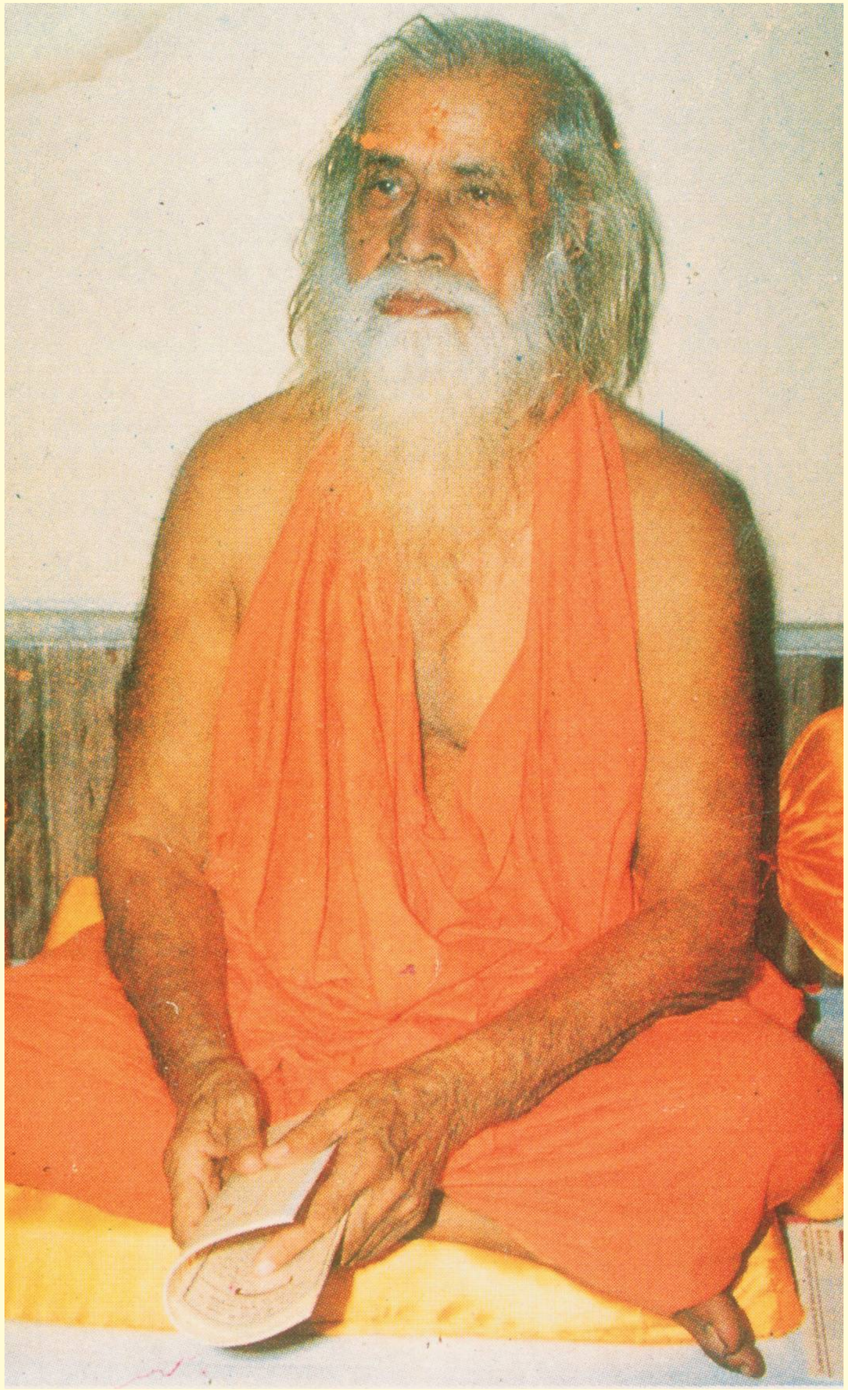

निर्णय

सोचो जिससे सब कुछ मिलता भगवान उसे ही कहते हैं।
जिसमें सब, जो सबमें परिपूर्ण, महान उसे ही कहते हैं।।
दोष जिसे दीखते न हों वह पशुवत मानव आकृति में।
जो मन में दोष न रहने दे, विद्वान उसे ही कहते हैं।।
निर्बलों के काम आ सके जो, जग में सच्चा बलवान वही है।
जब धन की चाह न रह जाये, धनवान उसे ही कहते हैं।।
कहते हैं वीर-धीर उसको मन इन्द्रिय जिसके वश में हों।
जिसका सुन्दर पवित्र जीवन श्रीमान उसे ही कहते हैं।।
वह भाग्यवान है, जो दुखियों को यथाशक्ति सुख देता है।
दे करके ले न कभी कुछ, दयानिधान उसे ही कहते हैं।।
कामनापूर्ति का जो भी प्राणी कामी क्रोधी बन जाता है।
निष्काम बना दे जो कि, प्रेममय ध्यान उसे ही कहते हैं।।
जिससे कि जान ले अपने को, इस जग को, जगदीश्वर को भी।
जब 'पथिक' मुक्त हो सके, ज्ञान-विज्ञान उसे ही कहते हैं।।

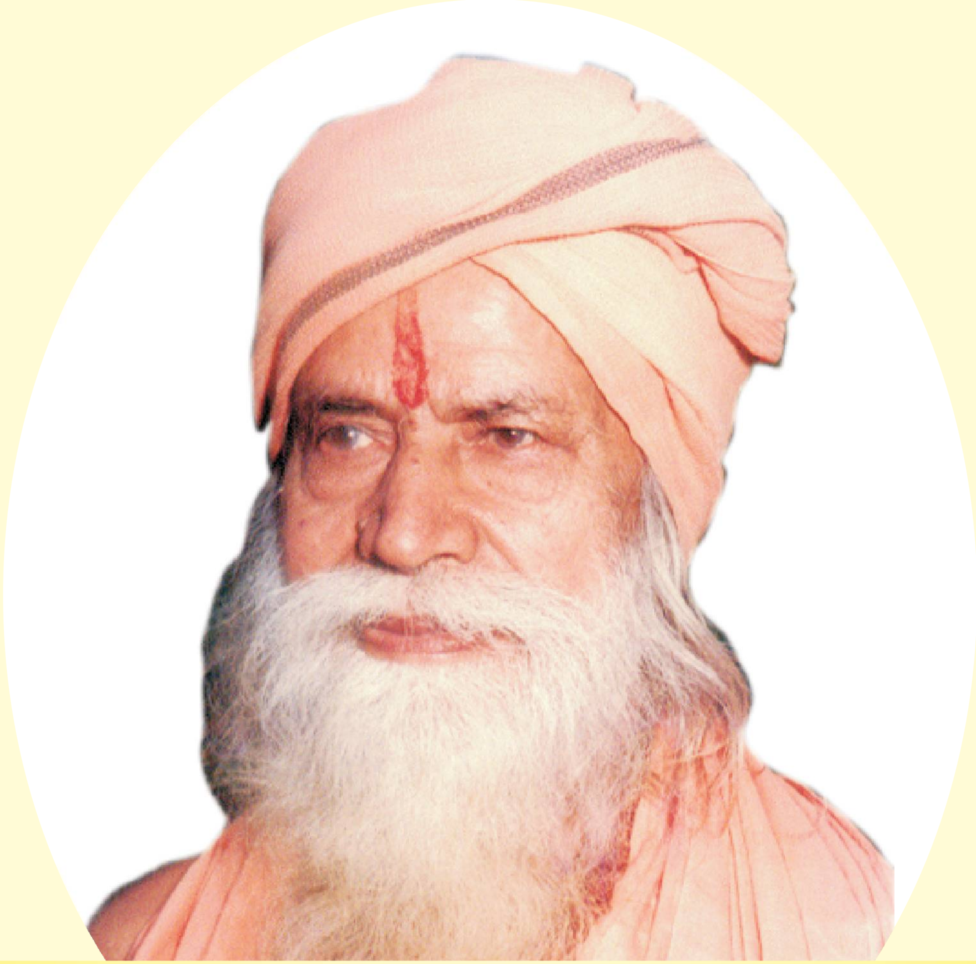

किरन की तरह लुटो, तिमिर से नफरत न करो।
नदी की तरह बहो, तट से मोहब्बत न करो।
उठो पर्वत से, मगर बादलों जैसे बरसो।
फूल से खिलो झरो, कोई वसीयत न करो।